

बौद्ध धर्म में उपासक के नैतिक जीवन का आधार: दसपुण्णकिरियावत्थु

जितेन्द्र कुमार

शोध छात्र, पालि विभाग, नव नालंदा महाविहार नालंदा, बिहार

संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार

सार

बौद्ध धर्म में उपासक का नैतिक जीवन कुशलकर्म, शील और चित्त की शुद्धि पर आधारित होता है। इसी आधार पर दसपुण्णकिरियावत्थु में नैतिक आचरणों का पालन करने हेतु दस कुशल कर्मों की व्याख्या की गई है। ये कुशल कर्मलोभ, द्वेष और मोह जैसे अकुशल मूलों को कमजोर करते हैं तथा साथ ही साथ उपासकों के जीवन में मैत्री, करुणा और प्रज्ञा के विकास में सहायक होते हैं। प्रस्तुत शोध में बौद्ध धर्म में उपासक के नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के निर्माण में दसपुण्णकिरियावत्थु की भूमिका का अध्ययन किया गया है। यह शोध स्पष्ट करता है कि दसपुण्णकिरियावत्थु केवल कुशल कर्मों के संचय का माध्यम मात्र नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ निर्वाण-प्राप्ति के मार्ग में सहायक माना गया है।

शब्द-कूट: बौद्ध धर्म, उपासक, नैतिक जीवन, दसपुण्णकिरियावत्थु, आध्यात्मिक विकास, निर्वाण।

Received : 5/8/2026 DOI: <https://doi.org/10.5281/zenodo.23096276>

Acceptance: 15/9/2026

परिचय:

भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को बहुजनहिताय बहुजनसुखाय सभी दिशाओं में विचरण करने के लिए प्रेरित किया था। इसका आशय ही यह है कि व्यक्तिगत आचरण के द्वारा समाज को भी उन्नतिगामी कर्मों को करने के लिए प्रेरित करें।

‘गवं ते तरमानानं जिह्म गच्छति पुगं वो।

सब्ब गावी जिह्मणं यन्ति नेते जिह्मं गते सति ॥’

एकमेव मनुस्सेसु यो होति सेट्ठसम्मतो

सो चे अधम्मं चरित पगेव इतरा पजा ॥

सव्वं रट्ठं दुक्ख सेति राजा चे होति अधम्मिको¹

अर्थात् गायों के नदी पार करने के समय यदि अगुवा टेढ़ा हो जाता है, तो उसके कारण गायें भी टेढ़ी हो जाती हैं। इसी प्रकार मनुष्यों में जो श्रेष्ठ माना गया है जैसे (राजा) यदि वह अधार्मिक (अकुशल) कर्म करता है तो सारा राष्ट्र दुःखों का भागी हो जाता है। इस प्रकार एक व्यक्ति अर्थात् नेता के अकुशल कर्म करने से, उसके अनुयायी भी वैसा ही कर्म करते हैं, और इससे सभी दुःख के भाजन बनते हैं। इसके विपरीत एक अन्य गाथा में कहा गया है कि- एवमेव मनुस्सेसु यो होति सेट्ठि सम्मतो। सो चे धम्मं चरित पगेव इतरा पजा सन्व

रहूं सुखं सेति राजा चे होति धम्मिको² अर्थात् इसी प्रकार मनुष्यों में जो व्यक्ति श्रेष्ठ माना जाता है, यदि वह धर्म के अनुसार आचरण करता है, तो अन्य प्रजा भी उसका अनुसरण करती है। जब राजा धर्मनिष्ठ होता है, तब समस्त प्रजा सुखपूर्वक निवास करती है। अन्यत्र भी कहा गया है कि -‘सुख बुद्धानं उप्पादो सुखो सधम्मदेसना। सुखं घस्स सामग्गी, समग्गानं तपो सुखो॥’³

जिस प्रकार किसी समाज का श्रेष्ठ व्यक्ति अपने आचरण से दूसरों का मार्गदर्शन करता है, उसी प्रकार यदि राजा अथवा शासक धर्मानुसार शासन करता है, तो उसकी प्रजा भी धर्माचरण करने लगती है। धर्मनिष्ठ शासक के शासन में राज्य में शान्ति, न्याय, सुरक्षा और समृद्धि का वातावरण स्थापित होता है तथा समस्त प्रजा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती हैं। कर्म वैयक्तिक हो चाहे उसका शुभ या अशुभ परिणाम (विपाक) उस कर्म की कुशलता ही निर्भर करता है। ‘कुशल कर्म व्यापक होने चाहिए। अर्थात् लोगों द्वारा होना चाहिए तभी सामाजिक चरित्र बलवान होता है अन्यथा नहीं। इस तथ्य से भगवान भलीभांति परिचित थे। संभवतः इसी कारण से उन्होंने भिक्षुओं को चरथभिवक्खवे चारिकं बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, हिताय सुखाय देवमनुस्सानं⁴ ऐसा आदेश दिया था। यह भी कहा जा सकता है कि सारे संसार को

उन्नति शील बनाने की करुणा बुद्धि से ही बुद्ध ने अपने संघ उनका पालन का निर्माण किया।

उपासक का स्वरूप : समंतपसादिका तथा सारथदीपनी टीका से प्रकट होता है कि जो व्यक्ति गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए बुद्ध, धम्म और संघ की शरण जाता ही उपासक कहलाता है।

सरणं गतो होति, धम्मं, सङ्गं सरणं गतो होति।

उपासको होती'ति ⁵

उपासक का धार्मिक जीवन शील परिपालन से परिपूर्ण होता है। उपासकों के लिए पाँच शीलों का विधान है जिसे पंचशील कहते हैं।

उपासको पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना, कामेसुमिच्छाचारा, मुसावादा, सुरामेरयमज्जपमादट्टाना पटिविरतो होति।⁶

पंचशील का पालन करने वाला व्यक्ति उपासक कहलाता है। उपासक सम्यक आजीविका से अपना जीवन यापन करता है। जीवन यापन करने के लिए धर्मानुसार मिथ्यामार्ग का परित्याग करता है। वह पाँच वस्तुओं का परित्याग करता है वे हैं -सत्थवणिज्जा सत्तवणिज्जा मंसवणिज्जा मज्जवणिज्जा विसवणिज्जा। इमा खो, भिक्खवे, पञ्च वणिज्जा उपासकेन अकरणीया'ति ⁷। शस्त्र का व्यापार, मांस का व्यापार, प्राणी अर्थात् सत्त्व का व्यापार, नसीले पदार्थ का व्यापार तथा विष का व्यापार। इन पाँच प्रकार के व्यापारों से विरत रहकर वाणिज्य-कर्म के माध्यम से जीवन-यापन करने वाले व्यक्ति को बौद्ध धर्म में उपासक के रूप में प्रतिपादित किया गया है। भगवान बुद्ध की समस्त देशनाएँ उपासकों के नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के निर्माण में अत्यन्त फलदायी सिद्ध होती हैं। तथापि यह स्वीकार करना अत्यन्त आवश्यक है कि जो मानव अभी तक अरहन्त अथवा बुद्ध नहीं हुए हैं, उनके चित्त में तीन अकुशल मूल अर्थात् अकुशल हेतु विद्यमान रहते हैं। यही अकुशल हेतु उन्हें जानबूझकर अथवा अनजाने में अकुशल कर्मों की ओर प्रेरित करते हैं तथा दुःख और भव -चक्र में बाँधे रखते हैं। धम्मपद के पुष्पवग्ग की गाथा से यह परिभाषित होता है कि, उपासक के नैतिक गुण उसके कुशल कर्मों के संचय पर आधारित है;

सब्बपापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा।

सच्चित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धानं सासनं ॥ ⁸

धम्मपद कि यह गाथा यह बताती है कि सभी पापों (अकुशल) का ना करना, कुशल कर्मों का संपादन करना तथा अपने चित्त को शुद्ध करना ही बुद्धों का शासन है। यहाँ पर कुशल धर्म को जान लेना अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जिसकी व्याख्या धम्मसंगति की अट्टकथा अट्टसालनी में इस प्रकार है-

“कुच्छिते पापके धम्मे सलयन्ति, चलयन्ति, कम्पेन्ति, विद्धंसेन्ती ति कुसला।”⁹

अर्थात्, जो कर्म और मानसिक गुण व्यक्ति के भीतर विद्यमान पाप तथा अकुशल प्रवृत्तियों को कम करते हैं और अंततः उनका विनाश कर देते हैं, वे 'कुशल' कहलाते हैं। इसलिए बौद्ध धर्म में कुशल कर्मों को नैतिक जीवन और आध्यात्मिक उन्नति का आधार माना गया है। इन्हीं कुशल कर्मों के आधार पर मनुष्य के कार्यायिक, मानसिक एवं वाचिक कर्मों के संस्कार बनते हैं, जो उनके निर्वाण में सहायक होते हैं। पालि साहित्य के अनुसार कुशल धर्मों की संख्या तीन हैं, जिसे कुसल हेतु भी कहा जाता है -

‘अलोभो, अदोसो, अमोहो -तीणि कुसलमूलानि।’¹⁰

इन्हीं तीनों कुशल हेतु के समायोजन से कुशल कर्मों का निर्धारण निरूपित होता है जिसे पुण्ण भी कहा जाता है।

दसपुण्णकिरियावत्थु : ‘दसपुण्णकिरियावत्थु’ चार शब्दों के योग से बना हुआ एक पालि पद है। ये चार शब्द हैं- ‘दस’, ‘पुण्ण’, ‘किरिया’ तथा ‘वत्थु’। इन चारों शब्दों के अर्थ एवं स्वरूप को इस लेख में क्रमशः स्पष्ट किया गया है। दस का अर्थ सामान्यतः दस ही है आचार्य आनंद द्वारा रचित उपासकजनालंकार में पुण्ण शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

पुज्जालनिब्बत्तनतो अत्तसन्तानं पुननतोच पुज्जाणि¹¹

अर्थात् जो कर्म पुण्यफल उत्पन्न करते हैं और व्यक्ति के चित्त को पवित्र एवं शुद्ध बनाते हैं, उन्हें ‘पुण्ण’ (पुण्य) कहा जाता है। किरिया को कत्तब्बताय¹² के अर्थ में परिभाषित किया गया है -जिसका अर्थ -करने योग्य होने के कारण। वत्थु को आधार या साधन के रूप में परिभाषित किया गया है **पुज्जाफलनिब्बत्तनतो अत्तसन्तानं पुननतोच पुज्जाणि, कत्तब्बताय किरिया तेसं आनिसंसां वत्थुताय वत्थुनिचाति पुज्जाकिरियवत्थूनि, गणनतो दसपरिमाणत्ता दस च तानि पुज्जाकिरियवत्थुनिचाति दसपुज्जाकिरियवत्थूनीति वुच्चन्ति।¹³**

अर्थात् जो कर्म पुण्यफल उत्पन्न करते हैं और व्यक्ति के चित्त को पवित्र एवं शुद्ध बनाते हैं, उन्हें 'पुण्य' (पुण्य) कहा जाता है। वे करने योग्य होने के कारण 'किरिया' (क्रिया) कहलाते हैं तथा उनके शुभ फलों के आधार होने के कारण 'वत्थु' (आधार) कहलाते हैं। इस प्रकार वे 'पुण्यकिरियवत्थु' कहलाते हैं। चूँकि उनकी संख्या दस है, इसलिए उन्हें 'दसपुण्यकिरियवत्थु' कहा जाता है।

दसपुण्यकिरियवत्थु के अंग : दानशीलभावनापचायन वेय्यावच्चपत्तिदानानुमोदन धम्मसवण धम्मदेसना दिट्ठिज्जुकम्मसङ्खुखातानिदसधम्मानी।¹⁴ दसपुण्यकिरियावत्थु में दान, शील और भावना तीन प्रमुख पुण्यकर्म हैं। शेष सात पुण्यकर्म इन्हीं में समाहित हैं। पत्तिदान और पत्तानुमोदना दान के अंतर्गत, अपचायन और वेय्यावच्च शील के अंतर्गत तथा धम्मसवण, धम्मदेसना और दिट्ठिज्जुकम्म भावना के अंतर्गत सम्मिलित माने गए हैं।

दान:- तत्थ दीयते एतेनाति दानं¹⁵ अर्थात् इसका शाब्दिक अर्थ जिसके द्वारा दिया जाता है, उसे दान कहते हैं। बौद्ध दर्शन में दान का अर्थ केवल किसी वस्तु का दान करना नहीं है, बल्कि उस दान के पीछे निहित त्याग, उदारता और परोपकार की भावना (देय्यधम्म-परिच्चाग-चेतना) ही वास्तविक दान माना जाता है।

देय्यधम्मपरिच्चाग चेतना एवं सेसेसुपि¹⁶।

उपासकजनालंकार के अनुसार, 'देय्यधम्म' अर्थात् दान के योग्य वस्तुओं की संख्या दस मानी गई है। ये हैं- अन्न (भोजन), पान (पेय), वस्त्र, यान, माला, गन्ध, विलेपन, शय्या, आवास तथा दीपा। इन दसों को सामूहिक रूप से 'दानवत्थु' कहा गया है, क्योंकि ये दान की वस्तुएँ तथा पुण्य-संचय के साधन हैं।

देय्यधम्मनाम:- अन्न पानं वत्थं यानं मालागन्ध विलेपनं, सेय्यावसथपदीपेय्यं दानवत्थु इमे दसासति। एवं अन्नादिदसविधां वत्थु¹⁷। इन वस्तुओं का दान केवल भौतिक सहायता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह दाता के नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास का भी साधन है। इनका दान करने से त्याग, उदारता, करुणा, मैत्री और परोपकार जैसे सद्गुणों का विकास होता है। साथ ही, समाज में सहयोग, सद्भाव, समानता और पारस्परिक विश्वास की भावना सुदृढ़ होती है। इस प्रकार दान व्यक्ति के लोभ का क्षय करता है, चित्त को निर्मल बनाता

है तथा पुण्य-संचय के माध्यम से उसे कुशल कर्म और निर्वाण-मार्ग की ओर अग्रसर करता है।

पत्तिदान :- जब व्यक्ति अपने स्वार्थ की अपेक्षा किए बिना करुणा और कृतज्ञता की भावना से अपने द्वारा अर्जित पुण्य को दूसरों के हित के लिए समर्पित करता है, तब उसे 'पत्तिदान' कहा जाता है। दान के जो पुण्यफल बताए गए हैं, वे सभी पत्तिदान में भी विशेष रूप से प्राप्त होते हैं।" अत्तत्थमनपेक्खित्वा परत्थं दीयते यतो, करुणा कतञ्जुता योगा पत्तिदानं¹⁸ दूसरे शब्दों में अपने द्वारा अर्जित पुण्य को निःस्वार्थ भाव से अन्य प्राणियों के कल्याण के लिए समर्पित करना। यह करुणा, कृतज्ञता और परोपकार की भावना का उत्कृष्ट रूप है। इसमें व्यक्ति अपने व्यक्तिगत लाभ की अपेक्षा किए बिना दूसरों के सुख और कल्याण की कामना करता है। बौद्ध धर्म के अनुसार पत्तिदान करने से वही शुभ फल प्राप्त होते हैं जो दान से प्राप्त होते हैं, बल्कि करुणामय भावना के कारण उसका नैतिक मूल्य और भी बढ़ जाता है। इस प्रकार पत्तिदान व्यक्ति में निःस्वार्थता, मैत्री और सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास करता है तथा उसे कुशल कर्म और आध्यात्मिक उन्नति की ओर प्रेरित करता है। बौद्ध धर्म में पत्तिदान केवल पुण्य का समर्पण नहीं, बल्कि सार्वभौमिक कल्याण की कामना का प्रतीक है। इसलिए यह नैतिक जीवन को समृद्ध बनाते हुए व्यक्ति के चित्त को शुद्ध करता है और उसे आध्यात्मिक प्रगति की ओर अग्रसर करता है।

पत्तानुमोदन : जो व्यक्ति दूसरों के पुण्य और सद्गुणों में प्रसन्न होकर उनकी अनुमोदना करता है, उसका चित्त गुणों से प्रसन्न हो जाता है तथा उसके भीतर की ईर्ष्या, कृपणता, द्वेष और हिंसा जैसी अकुशल प्रवृत्तियाँ नष्ट होने लगती हैं।

"इस्सा मच्छेरव्यापादं विहिंसाचापि नासिय,

गुणाराधितचित्तो यं अनुमोदति मोदको।"¹⁹

अनुमोदना करने वाला व्यक्ति सुन्दर रूप, ऐश्वर्य, दीर्घायु और सुख जैसे शुभ फलों का अधिकारी बनता है। इसका उदाहरण अनाथपिण्डिक (सुदत्त) द्वारा जेतवन विहार के दान के अवसर पर दिया गया है, जहाँ केवल हर्षपूर्वक अनुमोदना करने वाले व्यक्ति ने भी महान पुण्य अर्जित किया। सोण्णभिङ्कारहत्थस्स सुदत्तस्स सिरीमतो, दिस्वा सब्बज्जुबुद्धस्स सङ्गस्स ददतो सिरीं²⁰ इससे स्पष्ट होता है कि केवल निर्मल और प्रसन्न चित्त से की गई अनुमोदना भी

अत्यन्त फलदायी होती है। इसलिए बौद्ध धर्म में अनुमोदना को चित्त की शुद्धि, सामाजिक सद्भाव तथा कुशल कर्मों की वृद्धि का महत्वपूर्ण साधन माना गया है। इससे ईर्ष्या, द्वेष, कृपणता और प्रतिस्पर्धा की नकारात्मक प्रवृत्तियाँ कम होती हैं तथा मैत्री, उदारता और सद्भाव का विकास होता है। यह व्यक्ति के चित्त को निर्मल एवं प्रसन्न बनाकर नैतिक जीवन को सुदृढ़ करती है। बौद्ध धर्म के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति स्वयं दान या अन्य पुण्यकर्म न कर सके, तो भी दूसरों के पुण्यकर्मों की सच्चे मन से अनुमोदना करके महान पुण्य अर्जित कर सकता है। इस प्रकार अनुमोदना सामाजिक एकता, परस्पर सहयोग और आध्यात्मिक उन्नति का प्रभावी माध्यम है।

शील:- शीलयी ती' ति शील²¹ अर्थात् जो शरीर और वाणी के आचरण को संयमित एवं अनुशासित करता है, उसे 'शील' कहा जाता है। सुसील्यवसेन हि कायकम्मादीनि अविप्पकिण्णानि सम्पति आयतिञ्च हितसुखावहानि सम्मा ठपितानि समाहितानि होन्ति। शीलयति उपधारेतीतिवा शीलं, उपधारणं पनेत्थ कुसलानं अधिठानभावो।²² निश्चय ही शील ही परम कल्याणकारी है : संसार में शील से बढ़कर कोई श्रेष्ठ वस्तु नहीं है। आर्य पुरुषों के आचरण और सद्व्यवहार को ही 'शील' कहा जाता है, और जो इस प्रकार का आचरण करता है, वहीं 'शीलवान' कहलाता है।' उपासकजनालंकार में शील को इस प्रकार परिभाषित किया गया -

'शीलं सुखानं परमं निदानं सीलेन सिली तिदिवं पयाति,
शीलं हि संसारमुपागतस्स, तानञ्च लेनञ्च परायनञ्च।²³
शीलं किरेस कल्याणं शीलंलोके अनुत्तरं,
अरियवुत्ति समाचारो येन वुच्चति शीलवासति।²⁴

इन गाथाओं में शील को समस्त सद्गुणों, सुख, कल्याण तथा आध्यात्मिक उन्नति का मूल आधार बताया गया है। शील व्यक्ति के कायिक एवं वाचिक आचरण को शुद्ध और संयमित करता है, जिससे वर्तमान जीवन में शान्ति तथा भविष्य में सुखद फल प्राप्त होते हैं। यह समस्त कुशल धर्मों की आधारशिला है और मनुष्य को स्वर्ग तथा अंततः निर्वाण की ओर अग्रसर करता है। जैसे पृथ्वी समस्त चर-अचर प्राणियों का आधार है, उसी प्रकार शील सभी सद्गुणों का आधार है। इसलिए बौद्ध धर्म में आर्य आचरण और सद्व्यवहार को ही शील कहा गया है तथा शीलवान व्यक्ति को आदर्श नैतिक जीवन का प्रतीक माना गया है।

अपचायन : जिसके द्वारा श्रद्धा और पूजा के माध्यम से योग्य व्यक्तियों का सम्मान किया जाता है, उसे 'अपचायन' कहा जाता है। अपचायति पूजावसेन सामीचिं करोति एतायाति अपचायनं।²⁵ जो व्यक्ति अहंकार का त्याग करके श्रद्धा और सम्मान की भावना उत्पन्न करता है, बुद्ध आदि श्रेष्ठ गुणों से युक्त व्यक्तियों तथा उपकारी जनों के गुणों का विचार करके उनका आदर और पूजा करता है, वह श्रद्धा, कृतज्ञता, प्रज्ञा और विनम्रता जैसे गुणों से विभूषित हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को जहाँ-जहाँ जन्म मिलता है, वहाँ-वहाँ वह श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होता है, सम्मान प्राप्त करता है और सभी के द्वारा पूजनीय माना जाता है। यही अपचायन का पुण्यफल है। अपचायन से व्यक्ति में विनम्रता, कृतज्ञता, शिष्टाचार और अनुशासन जैसे नैतिक गुणों का विकास होता है। यह अहंकार और अभिमान का क्षय कर सद्भाव एवं पारस्परिक सम्मान की भावना को बढ़ाता है। परिवार और समाज में सौहार्द, विश्वास तथा सहयोग की स्थापना में भी अपचायन की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस प्रकार अपचायन व्यक्ति के नैतिक चरित्र को सुदृढ़ बनाकर उसे कुशल कर्मों तथा आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करता है।

वेय्यावच्च : जो व्यक्ति दूसरों के आवश्यक कार्यों को लगन, परिश्रम और तत्परता से करता है, उस सेवा-भाव को 'वेय्यावच्च' कहते हैं। "तं तं किच्चकरणे व्यावटस्स भावो वेय्यावच्चं।"²⁶ दूसरे शब्दों में माता पिता एवं रोगी आदि अन्य व्यक्तियों के द्वेष रहित कार्यों में सहायता करने की चेतना वेय्यावच्च कहलाती है। वेय्यावच्च अर्थात् निःस्वार्थ सेवा बौद्ध धर्म का अत्यंत महत्वपूर्ण पुण्यकर्म है। सेवा करने वाला व्यक्ति संकट के समय सहायता, समृद्धि, परिवार का सहयोग तथा अनेक प्रकार के शुभ फल प्राप्त करता है। विशेष रूप से रोगियों, गुणवान व्यक्तियों तथा बुद्ध, धम्म और संघ की सेवा का पुण्य अनन्त माना गया है। स्वयं भगवान बुद्ध ने कहा है-
यो गिलानं उपट्टति सो उपट्टेति मं इति, महा कारुणिकेनापि सो भुसं परिवणिणतो।²⁷ "जो रोगी की सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है।" इससे स्पष्ट होता है कि सेवा करुणा, मैत्री और परोपकार का सर्वोच्च रूप है। यह व्यक्ति के नैतिक चरित्र को महान बनाती है तथा उसे कुशल कर्म, पुण्य-संचय और आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करती है। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को इस नश्वर शरीर से सदैव सेवा-रूपी पुण्यकर्म करना चाहिए। इससे अहंकार का क्षय होता है तथा

सहयोग, सद्भाव और मानवता की भावना प्रबल होती है। रोगियों, वृद्धों, गुरुजनों तथा आवश्यकता-ग्रस्त लोगों की सेवा करने से व्यक्ति का नैतिक चरित्र सुदृढ़ होता है और समाज में पारस्परिक विश्वास एवं सहानुभूति का वातावरण बनता है। बौद्ध धर्म में वेय्यावच्च को कुशल कर्म और पुण्य-संचय का श्रेष्ठ साधन माना गया है, जो अंततः चित्त-शुद्धि और आध्यात्मिक उन्नति में सहायक होता है।

भावना : जिसके द्वारा कुशल धर्मों का विकास, अभ्यास और संवर्धन किया जाता है, उसे 'भावना' कहा जाता है। 'भावेति कुसलधम्मे, आसेवति, वदेति एतायाति भावना'²⁸ 'इसी ग्रंथ में बताया गया है कि दान और शील के अनेक लाभ हैं, परन्तु भावना (ध्यान-साधना) के माध्यम से उनसे भी उच्च आध्यात्मिक उपलब्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। भावना के बल से साधक का चित्त शुद्ध और शक्तिशाली बनता है, जिससे वह अभिज्ञाएँ (अलौकिक ज्ञान), दिव्य चक्षु, दिव्य श्रवण, पूर्वजन्म-स्मृति तथा परचित्त-ज्ञान जैसी सिद्धियाँ प्राप्त करने में समर्थ होता है। **भावना बलयोगेन बुद्धभावोपि साधियो, तदञ्ज काहि सम्पत्ति भावनाय असाधिया**²⁹ साथ ही, भावना व्यक्ति को महान आध्यात्मिक उन्नति, ब्रह्मलोक की प्राप्ति तथा अंततः बुद्धत्व और निर्वाण के मार्ग की ओर अग्रसर करती है। इसलिए बौद्ध धर्म में भावना को नैतिक जीवन, चित्त-शुद्धि और सर्वोच्च आध्यात्मिक विकास का अत्यंत महत्वपूर्ण साधन माना गया है।

धर्मश्रवण : लोक प्रशंसा की अपेक्षा न करके अपने ज्ञान के लिए तथा दूसरों को भली प्रकार धर्मदेशना करने के लिए धर्म श्रवण करना ही धर्म श्रवण है। बुद्धिमान व्यक्ति जब भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सद्धर्म का श्रवण करता है, तब वह उस धर्म को अत्यन्त गम्भीर, सत्य, मधुर और अमृत के समान अनुभव करता है।

**पञ्चा सुगमनोहि सद्धम्मं बुद्धदेसितं,
सुगम्भीरं अविताथं मधुरं अमृतं विय।**³⁰

जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सद्धर्म का श्रवण करता है, उसे गहन आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त होता है, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। सद्धर्म का सही ज्ञान केवल सुनने से ही प्राप्त होता है, बिना श्रवण के धर्म को समझना और उसके वास्तविक अर्थ का विवेचन करना सम्भव नहीं है। धर्म के अर्थ को समझे बिना न तो व्यक्ति अपना

कल्याण कर सकता है और न ही दूसरों का। **परियत्ति विना धम्मो नतिट्ठति कुदाचनं, सवणं विनापरियत्ति तस्मापि सवणं वरं।**³¹ इसी कारण धर्म की परम्परा भी श्रवण और अध्ययन के माध्यम से सुरक्षित रहती है। इसलिए बौद्ध धर्म में धम्मस्सवण को ज्ञान, प्रज्ञा, नैतिक जीवन तथा निर्वाण-मार्ग का महत्वपूर्ण आधार माना गया है।

2. धर्मदेशना : लाभ, सत्कार, यश आदि की कामना न करके सत्त्वों के हित सुख के लिए पवित्र चेतना द्वारा की गयी धर्मदेशना ही धर्मदेशना है। 'सब्बदानं धम्मदानं जिनाती'ति जिना बुवि, देसयी देसकवरो देसना दुल्लभाति च।³² धर्म का उपदेश को सभी दानों में सर्वोच्च बताया गया है। भौतिक वस्तुओं का दान समय के साथ समाप्त हो जाता है, किन्तु धर्म का दान देने से दाता और ग्रहणकर्ता दोनों का कल्याण होता है तथा धर्म का निरन्तर विकास होता है। धर्मोपदेश से सम्यक् मनन (योनिसो मनसिकार), प्रज्ञा और आर्य मार्ग का ज्ञान उत्पन्न होता है। इसके माध्यम से व्यक्ति धर्म के वास्तविक स्वरूप, संसार के दोष तथा चार आर्य सत्त्यों को समझता है। इसलिए जो व्यक्ति दूसरों के कल्याण के लिए धर्म का उपदेश देता है, वह स्वयं भी महान पुण्य का भागी बनता है और अनेक लौकिक तथा आध्यात्मिक सम्पत्तियों को प्राप्त करता है। इससे समाज में नैतिक चेतना, शान्ति और सद्भाव की स्थापना होती है। बौद्ध धर्म में धर्मदेशना को सर्वोच्च दान इसलिए कहा गया है कि यह केवल वर्तमान जीवन का ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक उन्नति और निर्वाण-मार्ग का भी द्वार खोलती है।

3. दृष्टिऋजुकर्मः पसंसा सरणगमनानुस्सतीनं दिट्ठिज्जुकम्मन्तो गधात्ता³³ अर्थात् शरणगमन (बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ग्रहण करना), बुद्ध आदि की स्मृति (अनुस्मृति) तथा सम्यक् दृष्टि (दिट्ठिज्जुकम्म) के लाभों को इन्हीं के आधार पर समझना चाहिए। **तेसुनुस्सरणीयेसु बुद्धादिसु सगारवो, अनुस्सरेय्य सततं संसारूपि समत्थिको।**³⁴ अनुमोदना और धर्मदेशना के जो गुण बताए गए हैं, वे भी यहाँ यथायोग्य लागू होते हैं। जो व्यक्ति बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ग्रहण करता है, वह मृत्यु के समय भी भय और भ्रम से सुरक्षित रहता है। इसलिए संसार में रहते हुए भी कल्याण की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को श्रद्धापूर्वक बुद्ध, धम्म और संघ का निरन्तर स्मरण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, जब दान आदि समस्त पुण्यकर्म सम्यक् दृष्टि से सम्पन्न किए जाते हैं, तब वे अत्यन्त महान फल और महान आनिसंस (लाभ) प्रदान करते हैं। यही

सम्यक् दृष्टि (दिट्ठज्जुक्कम्म) का प्रमुख लाभ है।

आधुनिक समाज में दसपुण्णकिरियावत्थु की प्रासंगिकता

आधुनिक युग में हिंसा, नैतिक पतन, पारिवारिक विघटन तथा मानसिक तनाव जैसी समस्याएँ निरन्तर बढ़ रही हैं। ऐसे समय में बौद्ध धर्म में प्रतिपादित दसपुण्णकिरियावत्थु आधुनिक समाज के लिए नैतिक जीवन का एक आदर्श मार्ग प्रस्तुत करते हैं। दान, शील, भावना, अपचायन, वेय्यावच्च, पत्तिदान, पत्तानुमोदना, धम्मस्सवण, धम्मदेसना तथा दिट्ठज्जुक्कम्म व्यक्ति के चारित्रिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास के आधार हैं। इनके अभ्यास से व्यक्ति में उदारता, करुणा, सत्यनिष्ठा, सेवा-भाव, सहिष्णुता तथा सम्यक् दृष्टि का विकास होता है। अङ्कुरनिकाय में दसपुण्णकिरियावत्थु का उल्लेख इस प्रकार मिलता है:-

“दानं सीलं भावना, अपचायनं वेय्यावच्चं।

पत्तिदानं पत्तानुमोदना, धम्मस्सवणं धम्मदेसना।

दिट्ठज्जुक्कम्माति, इमानि दस पुण्णकिरियावत्थूनि”।³⁵

अर्थात् दान, शील, भावना, सम्मान, सेवा, पुण्य का दान, पुण्य में अनुमोदना, धर्मश्रवण, धर्मदेशना तथा सम्यक् दृष्टि-ये दस पुण्यकर्मों के आधार हैं। धर्मदान की महत्ता का वर्णन करते हुए धम्मपद में कहा गया है;

सब्बदानं धम्मदानं जिनाति, सब्बरसं धम्मरसो जिनाति।³⁶

अर्थात् सभी दानों में धर्मदान श्रेष्ठ है तथा सभी रसों में धर्म का रस सर्वोत्तम है। इससे स्पष्ट होता है कि ज्ञान, सदाचार एवं धर्म का प्रचार समाज के नैतिक उत्थान का सर्वोत्तम साधन है। इसी प्रकार बड़ों के सम्मान की महत्ता बताते हुए धम्मपद में कहा गया है;

अभिवादनसीलस्स निच्चं बुदापचायिनो। चत्तारो धम्मा

वड्ढन्ति-आयु, वण्णो, सुखं, बलं।³⁷

अर्थात् जो व्यक्ति सदैव बड़ों का सम्मान करता है, उसकी आयु, यश, सुख और बल में वृद्धि होती है। इसी प्रकार करणीयमेत्त सुत्त में कहा गया है;

माता यथा नियं पुत्तं, आयुसा एकपुत्तमनुरक्खे।

एवम्पि सब्बभूतेसु, मानसं भावये अपरिमाणं ॥³⁸

अर्थात् जिस प्रकार माता अपने एकमात्र पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार सभी प्राणियों के प्रति असीम मैत्री एवं करुणा का भाव विकसित करना चाहिए।

निष्कर्ष:

अतः दसपुण्णकिरियावत्थु केवल धार्मिक कर्म नहीं हैं, बल्कि नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन के व्यावहारिक सिद्धान्त हैं। यदि आधुनिक समाज में इनका पालन किया जाए, तो नैतिक मूल्यों की पुर्नस्थापना, सामाजिक समरसता, मानवीय संवेदनाओं का विकास तथा विश्वशान्ति की स्थापना सम्भव है। इसलिए दसपुण्णकिरियावत्थु की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी बुद्धकाल में थी।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. दीघ निकाय, भाग 1,2,3 सं. जगदीश काश्यप, नालन्दा देवनागरी संस्करण।
2. मज्झिम निकाय, भाग 1,2,3 सं. जगदीश काश्यप, नालन्दा देवनागरी संस्करण।
3. संयुक्त निकाय, भाग 1,2,3,4,5 सं. जगदीश काश्यप, नालन्दा देवनागरी संस्करण।
4. अंगुत्तर निकाय, भाग 1,2,3,4,5 सं. जगदीश काश्यप, नालन्दा देवनागरी संस्करण।
5. सुत्तनिपात, सं. जगदीश काश्यप, नालन्दा देवनागरी संस्करण।
6. धम्मपद, सं. जगदीश काश्यप, नालन्दा देवनागरी संस्करण।
7. महावग्ग, सं. जगदीश काश्यप, नालन्दा देवनागरी संस्करण।
8. जातक भाग 1,2,3,4,5 सं. जगदीश काश्यप, नालन्दा देवनागरी संस्करण।
9. धम्मसंगणि, सं. प्रो. बापट, नालन्दा देवनागरी संस्करण।
10. विसुद्धिमग्ग, आचार्य बुद्ध घोष, सं. धर्मानन्द कोसंबी, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1940 ।
11. अमिधम्मत्थसंगहो, आचार्य अनुरुद्ध, सं. धर्मानन्द कोसंबी, महाबोधि सभा सारनाथ द्वारा प्रकाशित, 1941।

Bibliography:

1. अंगुत्तर निकाय, नालंदा संस्करण, पृ. 83
2. राजोवाट् जातक
3. वही
4. महावग्ग, नालंदा संस्करण, 1980 पृ. 231
5. सा० टी० टी० भा० 1. पृ. 316
6. वही, पृ. 318
7. अ०नि० पृ.5.177
8. धम्मपट्, नालंदा संस्करण, पृ. 115 ।
9. अट्टसालनी, नालंदा संस्करण, पृ. 238
10. धम्मसंगणि, नालंदा संस्करण, पृ. 161 ।
11. Saddhâtissa, H. (ed.). Upâsakajanâlankâra: A Critical Edition and Study. Pali Text Society, London, 1965
12. कत्तब्बताय यहाँ करने योग्य के अर्थ में लिया गया है
13. Saddhâtissa, H. (ed.). Upâsakajanâlankâra: A Critical Edition and Study. Pali Text Society, London, 1965
14. Young. Jonathan. The Ornament of Virtue: Constructing Lay Buddhist Skill in the Upâsakajanâlankâra:. Cornell University, 201. (Doctoral dissertation)
15. दीयते एतेनाति दानं
16. Saddhâtissa, H. (ed.). Upâsakajanâlankâra: A Critical Edition and Study. Pali Text Society, London, 1965
17. वही
18. एच. सद्दातिस्स (सम्पा.), उपासकजनालङ्कार : ए क्रिटिकल एडिशन एंड स्टडी, पाली टेक्सट सोसाइटी, लन्दन, 1965, पृ. 145 ।
19. वही
20. विनय पिटक, महावग्ग, गिलानवत्तुक्खन्धक, विनय पिटक, खण्ड 1,301-302।
21. एच. सद्दातिस्स (सम्पा.), उपासकजनालङ्कार: ए क्रिटिकल एडिशन एंड स्टडी, पाली टेक्सट सोसाइटी, लन्दन, 1965, पृ. 144 ।
22. वही, पृ. 144।
23. वही ।
24. वही।
25. एच. सद्दातिस्स (सम्पा.), उपासकजनालङ्कार: ए क्रिटिकल एडिशन एंड स्टडी, पाली टेक्सट सोसाइटी, लन्दन, 1965, पृ. 145 ।
26. वही, पृ. 146 ।
27. वही, पृ. 147 ।
28. जोनाथन ए. यंग, दिन ऑर्नामेंट ऑफ वच्यू: कन्स्ट्रक्टिंग ले बुद्धिस्ट स्किल इन द उपासकजनालङ्कार, प्रकाशित पीएच.डी. शोध-प्रबंध, कॉर्नेल विश्वविद्यालय, 2011, पृ. 213।
29. एच, सद्दातिस्स (सम्पा.), उपासकजनालङ्कार : ए क्रिटिकल एडिशन एंड स्टडी पालि टेक्सट सोसाइटी, लन्दन, 1965, पृ. 279।
30. वही, पृ. 281 ।
31. वही, पृ. 281 ।
32. वही, पृ. 282 ।
33. वही, पृ. 283 ।
34. वही, पृ. 285 ।
35. अङ्गुत्तरनिकाय, नालंदा, संस्करण, पृ. 174
36. धम्मपद, नालंदा संस्करण, गाथा 354, पृ.124
37. वही. पृ. 182।
38. मेत्तसुत्त, पृ. 94।

